तुलसी और उसका दर्शन

*डॉ. राजेश कुमार

भक्त कवि तुलसीदास भक्ति साहित्य के क्षेत्र में कलानिधि चन्द्र मावत रामामृत की धारा को प्रवाहित कर गए, जिसको पीकर जनता आज तक अमर है और युग–युग तक रहेगी।

जिन्होंने भक्त–भ्रमरों के लिए अपनी कृति वाटिका में भाव कलिकाओं द्वारा अनुराग और प्रेम मकरन्द की सुशील धारा प्रवाहित की और साहित्य–सेवियों के सम्मुख भगवती भारती की अप्रितिम प्रत्यक्ष करा दी। भला उनका प्रातः स्मरणीय पुनीत नाम जिस अभागे अरसिक के हृदय पटल पर चित्रित न होगा।

भक्त कवि और सुधारक होने के साथ–साथ ज्ञान निधि तुलसी दर्शन शास्त्र वेता भी थे। अतः उसका भी उन्होंने अपने ग्रन्थों में सुन्दर स्फुटन किया है। तुलसी ने अपने दो ही ग्रन्थों में 'विनय–पत्रिका' और 'मानस' में दर्शन ज्ञान का दक्षतापूर्ण विवरण दिया है।

'जीवन और अगत के गहनतम तत्वों के गम्भीर अध्ययन और चिन्तन के उपरान्त तुलसी की तत्वान्वेषी मेघा ने जो निष्कर्ष ग्रहण किए, वे ही 'रामचरितमानस' तथा 'विनय पत्रिका' में साहित्यिक भाव भूमि पर दार्शनिक सिद्धान्तों के रूप में संग्रहित एवं परिनियोजित हैं।

'रामचरितमानस' में तुलसी का दृष्टिकोण समष्टिगत अधिक रहा है, जबकि 'विनय पत्रिका' में व्यष्टिगत। ऐसा लगता है कि तुलसी की बाणी समष्टि के स्वरों में मनश्चेतना के इन्द्र को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल न हो सकी, तभी उसे विनय पत्रिका की आवश्यकता अनुभव हुई।'1

अपने जीवन की लम्बी यात्रा के बाद तुलसी जी को ऐसा अनुभव हुआ कि व्यक्ति समाज से बड़ा है। समाज के द्वारा हम व्यक्तित्व की विराटता को समझने का प्रयास करते हैं। समाज के मंच पर व्यक्ति अभिनेता के रूप में होता है और व्यक्ति की सीमाओं में वह अपने सहज प्राकृतिक रूप में जो वस्तुतः उसके जीवन का सत्य स्वरूप होता है। उसे समझता है। इसलिए व्यक्ति की आवाज समाज से सदैव ऊँची और महत्त्वपूर्ण होती है। 'विनय पत्रिका' के सृजन में तुलसी ने अपने इसी विराट अनुभूति को मूल आधार बनाया है। उनका समस्त दर्शन–सिद्धान्त इसी पर आधारित है। यही वह बिन्दु है जिस पर 'व्यक्ति–तुलसी' के मूल्यांकन के इस प्रयत्न के समष्टि कल्याण की साधना सिमट आई है और यही विनय पत्रिका के दार्शनिक सिद्धान्त का सर्वोच्च शिखर है।

'विनय पत्रिका' के दर्शन का विकास भक्ति के क्रोड में हुआ है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'विनय पत्रिका के दर्शन के मूल में भक्ति की पावन गंगा बह रही है, जिसकी उत्पत्ति से तुलसी के भावुक–हृदय ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त निरुपित और स्थिर किए हैं। यही कारण है कि वे किसी मत, सिद्धान्त अथ्वा वाद के रूढ़िगत पुजारी नहीं हैं। प्रत्येक दशा में उनके अपने मौलिक विचार और सिद्धान्त हैं। जो इस देश की पूर्व परम्पराओं के सम्पर्क में स्वतंत्र ढंग से विकसित एवं प्रतिष्ठापित हुए हैं।

गोस्वामी जी की आध्यात्मिक मान्यताओं पर द्वैत, अद्वैत अथ्वा विशिष्ठा द्वैत में किसका कितना प्रभाव पड़ा है, तथा तुलसी जी स्वयं किसके प्रमुख समर्थक हैं – यह बताना बड़ा कठिन है। इस सम्बन्ध में विद्वानों के बीच में मतैक्य नहीं है।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र का विचार है कि – 'स्वतंत्र रूप से उन्होंने कोई नई बात कहने का दावा नहीं किया, और जो कुछ कहा श्रुति–सम्पत्ति ही कहा। उनकी नवीनता यदि कुछ थी तो केवल उपयुक्त विषय के संग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग में थी। परन्तु इतना होते हुए भी उन्होंने जो सिद्धान्त रामचरितमानस द्वारा सर्वसाधारण के सामने रख दिए हैं, उन पर उन्हीं की अमिट छाप पड़ी है। इसलिए यदि हम उन सिद्धान्तों को 'तुलसी मत' कह दें तो किसी प्रकार का अनोचित्य न होगा।' **2**

इसके विपरीत **डॉ. माता प्रसाद गुप्त** का कथन है कि – 'तुलसी न निरे अद्वैत वादी थे न निरे विशिष्ट द्वैत वादी थे, और न उन्होंने उपयुक्त विषय के संग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग का कोई असामान्य प्रयास ही अपनी आध्यात्मिक मान्यताओं के विषय में किया है। 'अध्यात्म रामायण' और तुलसी के आध्यात्मिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि जो कुछ उन्हें 'अध्यात्म रामायण' में सिद्धान्त के रूप में मिला, प्रायः उसी का उन्होंने एक तर्क–संगत विकास किया।' **3**

डॉ. श्याम सुन्दर दास का मत है कि – 'तुलसी के मायावाद और शंकराचार्य जी के मायावाद में भेद दिखाई देता है, शंकराचार्य माया का अस्तित्व ही नहीं मानते, किन्तु तुलसीदास राम के बल पर उसका अस्तित्व मानते हैं। ' **4**

अभिप्राय यह है कि तुलसी जी माया का अस्तित्व तो स्वीकार करते हैं परन्तु भ्रमयुक्त रूप में। उनका विचार है कि माया के कारण ही जीव ब्रह्म को नहीं पहचानता। उसकी आँखों पर अज्ञान का पर्दा रहता है। जब रामजी की कृपा होती है तब वह पर्दा फट जाता है और जीव को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार गोस्वामी जी शंकर के 'जगन्मिथ्या सिद्धान्त' की पुष्टि करते जान पड़ते हैं।

जागु–जागु जीव जड़ जो है जग ज्ञामिनी।

देह–गेह–नेह जानि जैसे धन दामिनी।।1।।

सोवत सपने हुं सहै संसृति–संताप के।

बूड़यो मृग वादि खायो जेवरी को सांप दे।।2।।

कहै वेद–बुध तु तो बुझि मन माहिं रे।

दोष दुख सपने के जाये ही पै जाहि के।।3।।

तुलसी जाग ते जाप तम्य तिहुँ साथ रे।

राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे।।4।।

गोस्वामी जी का स्पष्ट संकेत है कि जीव के लिए इसी कारण असत्य है कि वह उसे हरि शून्य समझता है। जैसे ही जीव को जगत में हरि व्यापकता का भान हो जाता है उसी समय वह विश्व सत्य बन जाता है। इस प्रकार तुलसी की दृष्टि में जगत की असत्यता हरि शून्यता के अनुभव तक है। देखिए रामचरितमानस की उनकी निम्न पंक्यिाँ क्या इस तथ्य का समर्थन नहीं करतीं –

झुठहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।

तेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जगा सपन भ्रम जाई।।

डॉ. रामचन्द्र शुक्ल के मनानुसार – 'परमार्थ दृष्टि से शुद्ध ज्ञान दृष्टि से तो अद्वैत मत गोस्वामी जी को मान्य है, परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं।

पं. केशव प्रसाद मिश्र के अनुसार – 'यों तो गोस्वामी जी की समन्वय वृद्धि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में अविरोध देखती हैं, सभी को यथा स्थान महत्त्व देती है और सभी पक्षों का समर्थन करती हैं, पर उनके प्रस्थान के अनुरोध तथा ग्रन्थ के उपक्रम और उपसंहार के विचार द्वैत सिद्धान्त और भक्ति पक्ष में ही उसका (दार्शनिक दृष्टिकोण का) पर्यवसान प्रतीत होता है।' **5**

मिश्र जी की तुलना में दास जी के द्वैतवादी घोषित करते हैं पर मेरी दृष्टि में विशेषतः विनय पत्रिका के आधार पर वे द्वैतवादी नहीं ठहरते। सिद्धान्त उन्हें अद्वैत मत ही मान्य है, परन्तु भक्ति की व्यावहारिक भाव भूमि पर वे किसी 'आग्रह–विशेष' से नहीं बँधते। वहाँ वे सर्व सुलभ और जन–जन कल्याण रूपा वृत्ति से अनुप्राणित हो उठते हैं। प्रभु की दिव्य शक्ति को उसके द्वारा प्रणीत अखिल सृष्टि को वे देख आश्चर्यचकित है–

केशव कहिन जाइ का कहिये।

देखत तब रचना विचित्र हरि, समुझि मनहि मन रहिये।।1।।

सून्य भीति पर चित्र रंग सहिं, तक बिन्दु लिखा चितेरे।

धोये मिटइ न, मरइ भीति, दुख पाइआ एहि तक हेरे।।2।।

रविकर वीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।

बदन हीन जो ग्रसि चराचर पान करन जे जान्हीं।।3।।

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल तोऊ माने।

तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।।4।।

इस पद में आप तुलसी को द्वैत, अद्वैत एवं विशिष्टद्वैत तीनों से पृथक मार्ग का अनुगमन करते हुए पाएँगे।

'तुलसीदास जी के प्रत्येक विचार मे उनकी भक्ति का स्वर गूँजता मिलता है; यही कारण है कि वे निरे शुष्क दार्शनिक की भाँति कभी किसी तथ्य का प्रतिपादन नहीं करते। वे दर्शन के गूढ़ से गूढ़ तत्व को भी भक्ति की पृष्ठभूमि में ही देखने के अभ्यस्त रहे। वे भ्क्त पहले हैं और दार्शनिक बाद में। कोई भी विचार या सिद्धान्त जब उनके प्रभु में अविश्वास उत्पन्न करने लगता है, उसी समय वे उनके विरोधी हो जाते हैं। सभी मत और सिद्धान्त उनके अशरण–शरण के पाद–पद्यों की पावन–भक्ति में अंतस्थ हैं। इनसे भिन्न देखन उन्हें स्वीकार नहीं। वे सबसे पहले अपने भक्त वत्सल्य की मनोहर झाँकी देखते हैं। तुलसी के दार्शनिक विचार यहीं समस्त अन्य दार्शनिक सिद्धान्तो को बहुत ऊँचाई पर उठ जाते हैं। यही उनके दर्शन की गरिमा है, अप्रतिम प्रभाव है। तुलसी का मार्ग भक्ति मार्ग है। उनका अनन्य निष्ठा का सिद्धान्त है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।'**6**

आ. शुक्ल ने भी कहा है – 'अन्त में इस सम्बन्ध में यह कह देना आवश्यक है कि तुलसीदास जी भक्ति मार्गी थे, अतः उनकी वाणी भी भक्ति के गूढ़ रहस्यों को ढूँढ़ना ही अधिक फलदायक होगा, ज्ञान मार्ग के सिद्धान्तों को नहीं।'

विनय पत्रिका में तुलसी जी का दार्शनिक विचारधारा ने क्या स्परूप अपनाया है – इसे समझने के लिए निम्न बिन्दुओं के माध्यम से अलग–अलग प्रत्येक का अध्ययन करना श्रेयस्कर होगा।

1. ब्रह्म
2. जीव
3. माया
4. जगत
5. साधन–मार्ग

1. ब्रह्म (राम) :

ब्रह्म की आख्या तुलसीदास ने 'राम' दी है। राम को वे मर्यादा पुरुषोत्तम के साथ–साथ परब्रह्म परमेश्वर भी मानते हैं। सचिदानन्द भगवान राम निर्गुण भी हैं तथा सगुण भी हैं। यही नहीं प्रत्युत वे लीलावतारी भी हैं।

नित्य निर्मोह निर्गुण निरंजन निजानन्द, निर्वाण दाता।

निर्भरानन्द निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपणि निर्मन विधाता।। 7

– – –

अमल अनवध अद्वैत निर्गुण सगुण ब्रह्म समिरामि नर भूव रूप। 8

परम कारन कंजनाभ जदाय तनु सगुण निर्गुण सकल दृष्य दृष्टा।। 9

– – –

जाति सचिदानन्द व्यापक मद् ब्रह्म विग्रह व्यक्त लीलावतारी।

विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोच बस विमल गुण गहेकर देहधारी।।10

वे क्षीर सागर निवासी विष्णु भी हैं। इसी को पुराणों में विष्णु के जितने अवतार बताए गए हैं, वे प्रकारान्त से राम के ही अवतार हैं –

(क) उरग नायक तरुन समन पंकज नयन क्षीर सागर अयन सर्ववासी।11

(ख) ..... वामानिव्यक्त पावन परावर वियो। 12

(ग) वृष्णि कुल कुमुद राकेस राधा रमन कंस बंसावटी धूमकेतू। 13

(घ) ..... बुध अवतार वन्दे कृपाल।14

(ड़) विति सुत गास गसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी। 15

(च) छलन बलि कपट बहु रूप वामन ब्रह्म युवन पर्यन्त पद तीनि करणम्। 16

राम विष्णु से भी श्रेष्ठ हैं। विष्णु को विष्णुत्व अथवा यो कहिए हरि को हरिता राम से ही प्राप्त होती है।

हरिहि हरिता विधिहि विधिता सिबहि सिबता जी दई।

सोई जानकी पति मधुर मुरति गोदमय मंगल मई।। 17

राम ही सृष्टि की रचना, स्थिति तथा लय के कारण हैं –

(क) विश्व धृत विश्व रहित अजित गोतीत शिव विश्व पालन हरिण विश्वकत्ता।18

(ख) सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गुढार्चि भक्तानुकूले। 19

(ग) विश्व पोषन भरन विश्व कारण करन सरण तुलसी दास त्रास हंता। 20

राम ही माया, जीव, गुण, काल, कर्म तथा प्रकृति के एक मात्र अधिष्ठाता हैं –

प्रकृति महत्त्व शब्दादि गुन देवता व्योम मरूदग्नि अनकांबु उर्वी।

बुद्धि मन इन्द्रिय मान चिता तभा काल परमानु विच्छाक्ति गुर्वी।

सर्वमेवात्र तवद्रुप भूपाल मनि व्यक्तम व्यक्त गत भेद विष्णो।

भुवन भवदस कामारि वंदित पद द्वन्द्व मंदाकिनी जन जिष्णो। 21

इसीलिए आरम्भ रहित अचल, आनंद सिंधु विकार–रहित, अभोदनाद बंधु राम तथा ब्रह्म राम को अभेद दृष्टि देखते हुए गोस्वामी जी भगवान से शरण के निमति प्रार्थना करते हैं –

अनध अद्वैत, अनवध, अव्यक्त, अज

अमित अविकार आनंद सिंधो।

अचल, अनिकेतन, अविरल अनामय

अनारंग अमोद नादहन बंधो।।

दास तुलसी खेद खिन्न अपन्न इह।

शोक संपन्न अतिशय सभीं ही।

प्रणत पालक राम परम करुणाधाम।

पाहि मामुर्विपति दुर्विनीत।। 22

अर्थात् राम पाप रहित है, अद्वैत है, निर्दोष है, अप्रकट, अजन्मा, अनादि, विकार–रहित और आनंद सागर हैं। आप स्थिर है, गृह विहीन हैं (सर्वव्यापी हैं) आप अनंत हैं रोग–दोष रहित मेघनाद के नाश करने वाले श्री लक्ष्मण के सहोदर हैं। इस संसार के दुःखों और संतापों से घिरा हुआ दास तुलसी अत्यन्त भयभीत हो रहा है। हे प्रणत पालक, करुण धाम पृथ्वीपति राम! इस दुर्निवीत की रक्ष कीजिए।

2. जीव :

जीव ईश्वर का ही अंश है। उसी का दूसरा रूप है। जीव और ब्रह्म में अन्तर यह है कि ब्रह्म माया का अधिपति है

और जीव माया से अभीभूत –

हौं जद ईस रघुराया।

तुम माया पति हौं बस भाया।। 23

जब से जीव परमात्मा से अलग हुआ तभी से वह भाषा जाल में फँस गया। अपना मूल स्वरूप (सच्चिदानन्द रूप) भूल बैठा –

जिण जब ते हरि ते विलगान्यो।

तब ते देह गेह निज जान्यो।।

माया बस स्वरूप बिसरायो।

तहि भ्रम ते दारुन दुख पायो।। 24

जीव को धिक्कारते हुए और उसे अपने अस्तित्व का परिज्ञान कराते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि 'तू प्यास से क्यों मरा जा रहा है जबकि तेरा निवास–स्थान आनंद सागर है।' निम्नलिखित पंक्तियाँ जीवन के विशुद्ध रूप को प्रस्तुत करती हैं –

आनंद–सिंधु मध्य तब वासा। बिनु जाने कस मरसि पिसाचा।
मृग भ्रम–वारि सत्य जिय जानो। तहँ तू भगन भयो सुख मानो।।
तहँ भगन मज्जसि पान करि। गय का जल माही जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तब खल। ाूलि अब आयो वहाँ।।
निरमल, निरंजन, निरविकार, उदार सूख ते परिहायौ।
निःकाज राज विहाय नृप इव सपन कारागृह परायौ।। 25

हे जीव! तेरा निवास आनंद के समृद्ध में अर्थात तू आनंद स्वरूप पर ब्रह्म से भिन्न नहीं है। तू बिना जाने (अज्ञानवश) क्यों प्यासा मर रहा है? तूने मृगतृष्णा के जल इन्द्रियों विषयों को सत्य मान लिया और उसी में सुख मान कर मग्न हो गया। वहीं तू डूब कर (विषयों का ध्यान कर) नहा रहा है; और उसी को पी रहा है।

जहाँ तीनों काल में जल (सुख) नहीं अर्थात विषयों में न तो कभी सुख था, न है, और न रहेगा। रे खल। अब तू अपने सहज अनुभव रूप को भूल कर वहीं (जहाँ त्रिकाल में जल नहीं) आ पड़ा है। अर्थात अपने सच्चिदानन्द रूप को भूल कर अब तू अपने को शरीर रूप मान रहा है।

तूने विशुद्ध, अविनाशी, षट्–विकार (जन्म, अस्ति, वृद्धि व परिणाम, अपक्षय, नाश) रहित परम सुख को त्याग दिया। तेरी वही दशा जैसे कोई राजा व्यर्थ ही स्वप्न में राज छोड़ कर कारागृह में पड़ा हो।

जीव तथा परमात्मा में भेद केवल उसके मन में उत्पन्न विकारों के कारण है। यदि विकार दूर हो जाएँ तो सब कुछ स्पष्ट हो जाए, शुभ्र कमल सा जगमगा उठे –

जो नित मन परिहरै विकारा।

तो कत द्वेत जनित संसृति दुख, संशय सोक अपारा।। 26

माया के वशीभूत होने के कारण जीवन नाना सांसारिक वासनाओं में लिप्त हो जाता है; फलतः उसे बार–बार विभिन्न योनियों में भटकना पड़ता है। माया का यह जाल जीव के लिए ऐसा बंधन है जो प्रभु की कृपा के बिना सरलता से नहीं छूट सकता। इसीलिए गोस्वामी जी अत्यन्त व्यग्र भाव से अपने प्रभु से कहते हैं –

अस कछु समुझि परत रघुराया।

बिना तब कृपा दयालु! दास रहित! मोह न छूटे माया। 27

'वस्तुत जीव व्यक्ति की उस विराट आत्म भावना का प्रतीक है जो नित में अखिल सृष्टि को आत्मसात किए उस परम प्रभु से मिल जाने के लिए अनवरत प्रयत्नशील है। जब तक जीव, समष्टि एवं विश्व पर (जो माया का ही प्रकट रूप है) मुग्ध रहता है, उसके सान्निध्य में अपना कल्याण देखता है, तब तक उसे विराट 'स्व' की अनुभूति नहीं होती। फलस्वरूप प्रभु के पावन चरणों की महत्ती–कृपा से वंचित रहता है। विनय पत्रिका का महा कवि दर्शन के इस केन्द्र–बिन्दु पर मानस की अपेक्षा अधिक सजग है, जो उसकी समस्त काव्य–चेतना का सर्वोच्च और उदात्ततम बिन्दु है।' **28**

3. माया :

यह राम की शक्ति है, जो जीव को नाना भाँति मोहबद्ध करके उसे अपने वास्तविक रूप (सच्चिदानन्द रूप) का विस्मरण कराती रहती है। इसलिए इसे भ्रमात्मिका–शक्ति के नाम से भी पुकारा जाता है। यही जीव को पाप कर्मों में प्रवृत्त करती है। अतएव गोस्वामी जी अपने भक्त वत्सल प्रभु से कृपा–विशेष की याचना करते हैं क्योंकि तभी इससे मुक्ति मिल सकेगी।

देखिए उनका निवेदन कितना सहज है –

माधव असि तुम्हारि यह माया।

करि उपाय पंचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दया।।

सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै।

जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव दारुन विपति सतावे।।

ब्रह्म–पियुष मधुर सीतल जो पै मन सौ रस पावै।

तौ कतमृग जलरूप विषय कारन निसि वासर धावै।।

जेहि के अपन विमल चिंतामणी सोक्त कांच बटोरे।

सपने परबस परै, जागि देखत केहि जाई निहारै।।

ग्यान भगति साधन अनेक सब सच झूठ कछु नाहीं।

तुलसी दास हरि कृपा मिटै भ्रम, यह भरोसा मनमाहीं।। 29

हरि से भला अलग होकर माया के वशीभूत जीव माना दुःख भोगता है। अतः कवि मायापति राम की शरण माँगता है –

तेहि ईस की हौं सरन

जाको विषय माया गुनमई।। 30

माया के दो भेद :

विद्या और अविद्या। सीता जी विद्या माया की प्रतिमूर्ति हैं। इसी कारण उन्हें राम की 'योगमाया' भी कहा जाता है। यही रूप माया का रूप है तो भगवान की अनुकम्पा से भगवान के चरणों में संलग्न भक्ति के ऊपर अपनी छत्रछाया रखता है और भक्ति भाव के उद्रेक में सहायक होता है। विनय पत्रिका का कवि इस रहस्य से अवगत है, इसलिए वह जगदम्बा जानकी से बड़े चातुर्य पूर्ण ढंग से निवेदन करता है।

कबहुंक अँब अवसर पाई।

मेरिऔ सुधि छाइबी कछु करुन कथा चलाइ।।

जानकी जानकी की जन की किए बचन सहाइ।

तरै तुलसीदास भ्व तव नाथ गुन मन गाई।। 31

माया का अविद्या रूप प्राणियों को विश्व में नाना संकट देता है –

कृमि–भस्म–वित–परिनाम तनु, तेहि लागि जग वैरो भयो।

परवार, परधन दोह पर, संसार बाढ़ें नित नयो।। 32

जगत :

गोस्वामी जी उसी जगत को सत्य मानते हैं जो हरि–प्रतीति से आपूर्ण हो। हरि शून्य जगत उनकी दृष्टि में असत्य और एकमात्र भ्रम है। उसे एक धोखे की ..... के समान मानते हैं। उनका कहना है कि संसार फूली फली आकाश वाटिका सा है। जैसे आकाश में रंग–बिरंगे बादल फूलों के बाग की तरह जान पड़ते हैं, उसी प्रकार इस संसार के समस्त सुख भ्रम मात्र हैं। धुँए के महलों की भाँति वे एक दम मिथ्या हैं –

जग नभ वाटिका रही है फलि फूलिरे।

धुवाँ कैसे धोहा देखिन्द न भूलिरे।। 33

एक अन्य स्थान पर वे जगत को रात्रि बताते हुए लिखते हैं –

जागु–जागु जीव जड़ जो है जग ज्ञामिनी।

देह–गेह–नेह जानि जैसे धन दामिनी।।

सोवत सपने हुं सहै संसृति–संताप के।

बूड़यो मृग वादि खायो जेवरी को सांप दे।।

अद्वैतवादी अपने सिद्धान्तनुसार जगत को मिथ्या ठहराते हैं, सांख्यवादी इस गोचर जगत को सर्वथा न कह कर सत्य घोषित करते हैं और द्वैतवादी सत्यासत्य के रूप को निश्चित करते हैं। तुलसीदास जी इन तीनों को भ्रम

कहते हैं। उनका विचार है कि जो इन तीनों भ्रमों से परे होकर जगत का अवलोकन करता है वही इसके सत्ता रूप को पहचान कर आत्मा की अनुभूति कर सकता है –

कोउ वह सत्य, झूठ वह कोऊ, जुगल प्रबल कोऊ मानै।
तुलसीदास परि हरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।। 34

गोस्वामी जी का यह विचार है कि वस्तुतः संसार अत्यन्त भयानक है परन्तु अज्ञान के कारण मनोरम दिखाई देता है। सच्चे अर्थों में यह केवल उन्हीं के लिए सुखमय है जो सम, संतोष, दया और विवेक से सबके प्रति सद्व्यवहार कर रहे हैं।

अन चिार रमणीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम संतोष, दया, विवेक ते, व्यवहारी, सुखकारी।। 35

अस्तु! इस मायावी संसार से मुक्ति पाने हेतु वे अपने अशरण–शरण से अति विनम्र निवेदन करते हैं।

हे हरिः कस न हरइ भ्रम भारी।
जधपि मृषा, सत्य भाषै, जब लगि नाहिं कृपा तुम्हारी।। 36

अर्थात तुम्हारी कृपा नहीं हुई तो यह संसार वस्तुतः 'मृषा' होते हुए भी मुझे सत्य ही भाषित होता रहेगा और मैं सदैव इसके मोह जाल में बँधा रहूँगा।

साधन मार्ग :

साधन मार्ग से तात्पर्य भगवान की उपासना के मार्गों से है। इस प्रक्रम से गोस्वामी जी साधु संतों की सेवा को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। उनका विचार है कि साधु–संतों के सम्पर्क में भक्ति का मन निर्मल होता है और उसके भीतर से राग, द्वेष तथा भय का उन्मूलन होने लगता है। धीरे–धीरे उससे समस्त विकार दूर हो जाते हैं और सच्चिदानन्द के चरणों के प्रति उसमें सच्चा अनुराग उत्पन्न हो जाता है। देखिए अपने इस दृष्टिकोण का निरूपण विनय पत्रिका में किस प्रकार करते हैं –

सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्री रघुवीर चरण लौ लागै।।
देह जनित विकार सब त्यागै। तब फिर निज स्वरूप अनुरागे।।
निरमल निरामय एक रस, तेहि हर्ष शोक न व्यापई।।

राम के प्रति अनुराग उत्पन्न होने से ही भेद में अभेद की भावना जाग्रत होती है। राम भक्ति आश्रित हो जाने के उपरान्त ही भ्रम का अंत होता है। श्री रामजी की ही भक्ति सर्व सुलभ और सुखप्रद है। वह भौतिक दैविक और दैहिक तीनों तापों तथा समस्त शोक और भय को दूर करने वाली है। भक्ति सत्संग के बिना नहीं प्राप्त हो सकती; और भक्त जन बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। जबकि रघुनाथजी की कृपा होती है।

रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी। सो भय ताप शोक भय हारी।।
बिनु सतसंग भक्ति नहि होई। ते तब मिलै द्रवै जब सोई।।
जब द्रवै दीन दयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहि दरस–परस सयाममादिक पाप रासि नसाइये।।
जिनके मिले दुख–सुख सयान, अमानशादिक गुण भये।

मद मोह–लोभ–विषाद–क्रोध, सुबोध ते सहजहिं गये।। 37

राम भक्ति प्राप्त करने का सबसे सरल मार्ग संत सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। समस्त विनय पत्रिका में गोस्वामी जी ने इस मार्ग पर बहुत जोर दिया है। इसकी प्रसस्ति में अनेक पदों की रचना कर डाली है। एक दो उद्धरण प्रस्तुत करना कोई असंगत न होगा –

जो तेहि पंथ ले मन लाई। तो हरि काहे न होहि सहाई।
जो मारण श्रुति साधु दिखावैं। तेहि पथ चलत सब सुख पावै।।
पावै सदा सुख हरि कृपा, संसार आशा तजि रहै।
सपनेहुँ नहिं सुख द्वैत दरसन, बात कोटिक को कहै।।
द्विज देव गुरु हरि संत बिना संसार पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रास हरन रमापति गाइये।। 38

– – –

संसय–समन, दमन–दुख सुख निधान हरि एक।
साधु कृपा बिना मिलहिन, करिय उपाय अनेक।। 39

भवसागर से मुक्ति तभी मिल सकती है जब राम के चरणों मे अनन्य अनुराग हो। राम से विमुख होने पर कैसे भी यत्न क्यों न किए जाए इस भवसागर से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए गोस्वामी जी संसार जनित विकारों को त्याग कर सर्व सुखदायी रामकृपा पर ही आश्रित रहने की ही सलाह देते हैं।

राम नाम ही राम भक्ति प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है। 'राम नाम' की समता तीर्थ व्रत आदि कोई नहीं कर सकता। संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए 'राम नाम' का जहाज ही सर्वोत्तम है। उस पर चढ़ कर सहज ही भवसागर पार किया जा सकता है। गोस्वामी जी को तो उसके अतिरिक्त अन्य कोई आवलम्ब ही नहीं

***सह–आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, उनियारा (टोंक)

संदर्भ सूची

1. दान बहादुर पाठक विनय पत्रिका समीक्षा पृ. 171
2. डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र : तुलसी दर्शन पृ. 307
3. डॉ. माता प्रसाद गुप्त : तुलसीदास पृ. 378
4. कल्याण ,मानस अंक खण्ड 2 पृ. 977
5. दान बहादुर पाठक वि.प. समीक्षा पृ. 174
6. वि.प. पृ. 56
7. वि.प. पृ. 50
8. वि.प. पृ. 53

9. वि.प. पृ. 43
10. वि.प. पृ. 55
11. वि.प. पृ. 49
12. वि.प. पृ. 52
13. वि.प. पृ. 52
14. वि.प. पृ. 93
15. वि.प. पृ. 52
16. वि.प. पृ. 135
17. वि.प. पृ. 61
18. वि.प. पृ. 53
19. वि.प. पृ. 55
20. वि.प. पृ. .....
21. वि.प. पृ. 56
22. वि.प. पृ. 177
23. वि.प. पृ. 136
24. वि.प. पृ. 136
25. वि.प. पृ. 124
26. वि.प. पृ. 123
27. दान बहादुर वि.प. पृ.185
28. वि.प. पृ. 116
29. वि.प. पृ.136
30. वि.प. पृ.41
31. वि.प. पृ.136
32. वि.प. पृ. 66
33. वि.प. पृ.111
34. वि.प. पृ.121
35. वि.प. पृ.120
36. वि.प. पृ. 136
37. वि.प. पृ. 136
38. वि.प. पृ. 203
39. वि.प. पृ. 1

(वि.प. = विनय पत्रिका)